IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
IJARSCT
Impact Factor: 6.252
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
Volume 3, Issue 1, January 2023

मीमांसा–दर्शन में कैवल्य या मोक्ष

डॉ. संजय कुमार
(सहायक शिक्षक)
शास. वेंकट संस्कृत महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

शोध–सारांशः

लोक तथा परलोक में कल्याण की प्राप्ति हो उसे 'धर्म' कहते हैं। इस धर्म या वेद के अर्थ का विचार करने वाला शास्त्र मीमांसा कहलाता है। इस धर्म में दर्शन का भी समावेश हो जाता है। अतः मीमांसा दर्शन छः दर्शनों में सम्मिलित है। इसे पूर्व मीमांसा या कर्ममीमांसा भी कहा जाता है। क्योंकि इस दर्शन में कर्मकाण्ड का ही विशेष रूप से प्रतिपादन किया गया है। कर्मकाण्ड ज्ञान काण्ड से पहले है। इसलिए इस भाग को पूर्व मीमांसा कहा जाता है। वेदान्त में ज्ञान काण्ड पर विशेष रूप से बल दिये जाने का कारण ही उसे उत्तर मीमांसा आदि बिन्दुओं का इस शोध पत्र में उल्लेख करने का एक प्रयास है।

मुख्य शब्दः मीमांसा, दर्शन, कैवल्य, मोक्ष, कर्मकाण्ड, पुनर्जन्म आदि

प्रस्तावनाः

मीमांसा का उद्देश्य वैदिक विधि निषेधों का अर्थ समझाने के लिए और उनका परस्पर सामंजस्य करने के लिए व्याख्या प्रणाली निर्धारित करना और कर्मकाण्ड के मूल सिद्धान्त का युक्ति द्वारा प्रतिपादन करना है 'कर्मकाण्ड में आत्मा की अमरता, कर्मों का फल, अदृष्ट, पुनर्जन्म तथा वेद और जगत की सत्यता के सिद्धान्त आ जाते है। मीमांसा दर्शन में इन सबका प्रतिपादन किया गया है। मीमांसा दर्शन में वेदों का नित्य अपौरुषेय तथा स्वतः प्रामाण्य माना गया है। वेदों की अपौरुषेयता पर मीमांसा में गंभीर एवं मौलिक दृष्टि से विचार किया गया है। इसीलिए मीमांसा को वैदिक दर्शन की संज्ञा दी गई है। इसमें वेदों की सनातन, अनादि, अनन्त रूप पर संदेह करने वाले अन्य दर्शनों का युक्ति युक्त खण्डन किया गया है। मीमांसा के अनुसार वेदों को ईश्वरकृत कहना असंगत है। अन्य दर्शनों में वेदों की अपैरुषेयता की सिद्धि के लिए अनुमान का सहारा लिया गया है, किन्तु मीमांसा में उसको उपाधि ग्रस्त कहकर उसका खण्डन किया गया है।

जिन्होंने वेदों को ऋषि प्रणीत कहा है उनके अनुसार अन्य सांसारिक वस्तुओं की भाँति वेदों को भी प्रलय काल में विनष्ट होने वाला माना गया है। इसके अतिरिक्त वेदों में अनके ऋचाओं, सूक्तों को उनमें आयें ऋषियों के नामों के अधार पर ऋषिप्रणीत माना गया है। उनमे ऐसे व्यक्तियो के नाम आये है। जो ऐतिहासिक है। इसलिए वेदों को अनित्य जाना चाहिए। इसलिए वे अपौरुषेय भी नहीं है । कहा इन विरोधों को मीमांसा में निरस्त कर दिया गया है। वहाँ माना गया है कि वेद भगवान् के निःश्वास है । प्राणिमात्र में जैसे श्वास प्रश्वास

की क्रिया अनायास एवं स्वाभाविक है ठीक वैसे ही उस महाभूत के मुख से वेदों का निर्गमन हुआ। वेदानित्य और सत्य है। जिन ऋषियों का उनमें नाम आया है वे ऋषि मन्त्रों के रचयिता या प्रणेता न होकर प्रवक्ता है। उन्हें ऋषि प्रणीत कहना मनवीय दृष्टिकोण की कमजोरी है। शुद्ध बुद्धि से चिन्तन करने पर यह सहज ही अवगत हो जाता है कि सत्य प्रकृति ऋषियों के शुद्ध अन्तःकरण में पुशकल्प के अनुभूत सत्यों का प्रकट होना कोई नहीं बात नही। उनके वे अनुभव जो वेदमन्त्रों में देखने को मिलते हैं अनादि है। इसलिये यह कहना कि उन्होंने अपनी ज्ञान मेधा से वेद मन्त्रों का निर्माण किया यह उचित नहीं।

अपौरुषेय होने से वेद निष्कऋष एवं निर्दोष है। पुरुष सदोष ओर सकलुष है। इसलिए उसके द्वारा किया गया कार्य सदोष होगा। शिष्य परम्परा द्वारा वेदों का अध्ययन अध्यापन होता आया है। योगदर्शन वेदों को गुरुओं का भी गुरू कहा है। वेद भ्रान्ति मूलक नहीं है, जहाँ कर्मकाण्ड का फल ठीक नहीं दिखाई देता, वहाँ वेद का नहीं, बल्कि क्रिया और ऋत्विक आदि का दोष समझना चाहिए। अतः वेद, अनादि अपौरुषेय एवं स्वतः प्रमाण है।

आचार्य जैमिनी ने तीसरे मीमांसा सूत्र में अध्याय में वेदों की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए श्रुति प्रमाणों का निर्धारण किया है। वे इस प्रकार हैं—श्रुति, लिंग, वाक्य, प्रकरण, स्थान तथा समाख्या। इनमें—**यस्य निःश्वसितं वेदाः ।**

परस्पर की अपेक्षा पूर्ण पूर्व को प्रबल माना गया है। अर्थात् समाख्या की अपेक्षा स्थान एवं स्थान की अपेक्षा लिंग एवं लिंग की अपेक्षा श्रुति अधिक बलवान है। अतः श्रुति सबसे प्रबल प्रमाण है। श्रुति उस वाक्य को कहते हैं जो वेद वाक्य है। शब्दों में अर्थ अभिव्यक्तीकरण को लिंग कहते हैं। दूसरे योग्य पद की अपेक्षा रखने वाले पद समूह को वाक्य कहते हैं। जो अंगभूत दूसरे वाक्यों की अपेक्षा नहीं रखता, उस प्रधान वाक्य को प्रकरण कहते हैं। क्रम पठित शब्द के साथ क्रम पठित अर्थ के सम्बन्ध को स्थान कहते हैं। इसी प्रकार संचार सादृश्य को समस्या कहते हैं।

कर्मकाण्ड के सन्देह का निर्णय के लिए ही जैमिनि ने धर्म जिज्ञासुओं के लिए पूर्व मीमांसा दर्शन का निर्माण किया है। धर्म जिज्ञासा ऐसी वस्तु है जहाँ प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए अनुभव का आश्रय नहीं लिया जाता, बल्कि वहाँ श्रुति, लिंग, वाक्य, प्रकरण, स्थान और समस्या इन्हीं को प्रमाण माना गया है। मीमांसा में इन छः प्रमाणों का विस्तृत विवेचन किया गया है।

प्रमाणों के धर्म विशेष को प्रामाण्य कहते हैं यथार्थ ज्ञान के प्रमात्व को प्रामाण्य कहते हैं। भ्रान्ति तथा संशय रहित, निश्चात्मक, यथार्थ अनुभव में विद्यमान धर्म विशेष को प्रमाण्य कहते हैं। जो पदार्थ जिस रूप में अवस्थित है, यदि वह अव्यभिचारित है उसकी वास्तविकता उसी रूप में है तो वह स्वतः प्रमाण है।

प्रमाण्य वाद को लेकर दर्शनों में अनेक तरह के सिद्धान्त स्थिर किये गये हैं। स्वतः प्रामाण्य और परतः रहा है, उसे इस प्रकार प्रस्तुत किया गया हैप्रमाण्य के सम्बन्ध में जो मतभेद—

प्रमाणत्वाप्रमाणत्वे स्वतः सांख्याः समाश्रिताः।

नरैयायिकास्ते परतः सौगताश्चरमं स्वतः।

प्रथमं परतः प्राहुः प्रमाण्य वेद वादिनः।

प्रमाणत्वं स्वतः प्राहुः परतश्चाप्रमाणताम् ।।

अर्थात् सांख्य दर्शन के अनुसार प्रमाणत्व और अप्रमाणत्व दोनों की उत्पतित स्वतः से नैय्यायिको दृष्टि में परतः प्रमाण, बौद्धों के मत में अप्रमाण्य का जन्मस्वतः तथा प्रामाण्य का परतः से मीमांसकों के मत में प्रामाण्य का जन्म स्वतः अप्रमाण्य का जन्म परत से है। इसका निष्कर्ष यह है कि प्रामाण्य स्वतः उत्पन्न होता है या वह अपने आश्रय ज्ञान से उत्पन्न होता है या वह अपने आश्रय ज्ञान से उत्पन्न होता है अथवा वह ज्ञान की कारण सामग्री से उत्पन्न होता है या ज्ञान के जितने साधारण कारण हैं उनसे उत्पन्न विशेष ज्ञान से प्रामाण्य निहित रहता है।

प्रामाण्यवाद को लेकर नैय्यायिकों एवं मीमांसकों में बड़ा मतभेद रहा है। नैय्यायिक परतः प्रामाण्य और मीमांसक स्वतः ज्ञापक कारण विषयक है। जनक कारण उसे कहते हैं जिससे कार्य उत्पन्न होता है एवं ज्ञापक कारण वह है जिससे कार्य का ज्ञान प्राप्त होता है।

प्रामाण्य का कारण स्वतः है या परतः इस प्रकार का जो संशय है उसी का समाधान तथा स्पष्टीकरण प्रामाण्यवाद तथा ज्ञानकारण की सामग्री का ग्रहण किया जाता है। परतः शब्द से इन तीनों से भिन्न का आशय ग्रहण किया जाता है।

नैय्यायिक परतः प्रामाण्य को मानने वाले है। उनके ज्ञान की प्रामाणिकता के मतानुसार प्रत्येक लिए अतिरिक्त कारणों का होना आवश्यक है। नैय्यायिकों का कहना है कि एक व्यक्ति अपने ज्ञान का विषय या प्रामाण्य व्यक्त करता है, दूसरा व्यक्ति अपने ज्ञान के विषय का अप्रामाण्य व्यक्त करता है तो जब अनवस्था दोष हो जाता है। क्योंकि जब एक ज्ञान व्यक्ति से प्रमाण्य प्रतिपादित है तो स्वतः होने पर उस पर अपामाण्य क्यों नहीं रहेगा । ऐसी अवस्था में किस ज्ञान में प्रामाण्य और किसमें अप्रामाण्य माना जाए। इसलिए यह मानना होगा कि ये दोनों स्वाभाविक नहीं है। इस दृष्टि से यह सिद्ध हुआ कि परतः प्रमाण्य तर्क संगत है।

इसके उत्तर में मीमांसकों का कहना है कि यदि प्रामाण्य में परतः माना जायेगा तो ज्ञान अपनी सत्ता को प्राप्त न कर पायेगा। उसका मूल भी उच्छिन्न हो जायेगा। नैय्यायिको के अतिरिक्त कारणों नेत्रविकारदि को मीमांसक कारण सामग्री का अंग मानते हैं नैय्यायिको का यह कहना है कि प्रत्येक ज्ञान का अन्नु प्रामाण्य अनुमान द्वारा निश्चित होता है। यहाँ मीमांसकों का कहना है कि ऐसा मानने से अनवस्था दोष आ जायेगा और कोई भी प्रामाण निश्चित न हो पायेगा। जैसे–शेर देखकर यदि हम उसका प्रमाण सिद्ध करने के लिए दूसरे उपायों का आश्रय लेंगे तो निश्चय ही प्राणों से हाँथ धोना पड़ेगा। किन्तु वास्तविकता यह है कि शेर को देखते ही हम वहाँ से पलायन कर जाते हैं। इससे स्वतः प्रामाण्य ही सिद्ध होता है ।

मीमांसकों के अनुसार नित्य, अपौरुषेय वेद स्वतः प्रमाण हे। उनका प्रमाण स्वतः सिद्ध है किसी अनुमान पर निर्भर नहीं है। वेदार्थ को समझने के लिए मन के संशयों को तर्क द्वारा परिमार्जित करने का उद्वेश्य वेदार्थ की सत्यता को प्रमाणित करना है ।

मीमांसकों की दृष्टि से वेदस्वतः प्रमाण है। उन्हें आगम–प्रमाण या शब्द प्रमाण कहा जाता है। मीमांसक वेद को एकमात्र प्रमाण मानते हैं। व्यावहारिक दृष्टि से मीमांसकों का अभिमत है कि जन, सामान्य अपनी आँखों द्वारा दूर से जल देखकर उस स्थान पर जल हैं, इस ज्ञान को निश्चित करके वहाँ जल ग्रहणार्थ जाता है। कुमारिल भट्ट एवं प्रभाकर का कहना है कि ज्ञान और मिथ्या ये दोनों बातें एक साथ नहीं रह सकती। ज्ञान हमेशा सत्य होता है ।

आचार्य प्रभाकर ज्ञान को स्वतः प्रमाण एवं स्वप्रकाश मानते है। उनका मत है कि स्वतः प्रमाण होने से ज्ञान का स्वतः प्रकाश अपने कार्य–कारण सम्बन्ध के विषय में मीमांसक शक्तिवाद का सिद्धान्त मानते हैं। उनका कहना है कि बीज से अंकुर अदृष्ट शक्ति के कारण उत्पन्न होता है। बीज को भून देने से अंकुर क्यों नहीं उत्पन्न होता इसका वे उत्तर देते हैं कि बीज के भुन जाने से उसकी अदृष्ट शक्ति नष्ट हो जाती है इसी प्रकार उनके अनुसार अग्नि जलाने में प्रकाशशक्ति काम करती है। शब्द में अर्थ बोधकता क्रियोत्पादकता शक्ति से है। यदि कारण में अदृष्टशक्ति न होती तो बीज के भून देने के बाद भी अंकुर उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिए कारण में अदृष्ट शक्ति के होने पर ही कार्य होता है।

अदृष्ट शक्ति के सिद्धान्त के आधार पर ही मीमांस दर्शन में अपूर्व का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है। मीमांसा दर्शन के अनुसार इस लोक में किये गये कर्म, एक अदृष्ट शक्ति को उत्पन्न करते हैं। जिसे अपूर्व कहते हैं। यह कर्म का फल भोग करने की शक्ति है, और समय विशेष पर प्रतिकलित होती है। यह अपूर्व कर्मफल के सिद्धान्त का ही वाचक है। कर्मफल के व्यापक सिद्धान्त के अनुसार लौकिक या वैदिक सभी कर्मों के फल संचित होते हैं। मीमांसा दर्शन का यह प्रमुख सिद्धान्त है।

आत्मा के बन्धन और मोक्ष के विषय में मीमांसा दर्शन का सिद्धान्त अन्य दर्शनों से कुछ भिन्न है। मीमांसा बहुवादी दर्शन है। उसके अनुसार प्रत्येक जीव का आत्मा पृथक्–पृथक् है । इस प्रकार जितने जीव है। उत्नी आत्मयें हैं आत्मा नित्य, अविनाशी है। शरीर के मरने से आत्मा नहीं मरता बल्कि अपने कर्मों के फल को भोगने के लिए विद्यमान रहता है। मीमांसकों के अनुसार चौतन्य आत्मा का स्वभाव नहीं है। वह अवस्था विशेष में उत्पन्न होने वाला औपाधिक गुण है। सुसुप्ति और मोक्ष की अवस्था में इन्द्रिय विषय संयोग आदि उत्पादक कारणों के न रहने से आत्मा में चौतन्य भी नहीं रहता।

भाट्ट मतानुयायी मीमांसकों के अनुसार प्रत्येक विषय ज्ञान के साथ आत्मा का ज्ञान नहीं होता। उनका कहना है कि आत्मा अहंवित्ति का विषय है। जब हम आत्म पर विचार करते हैं, तब मैं हूं का बोध होता है। किन्तु गुरुमतानुयायी मीमांसक इस मत को नहीं मानते। उनके अनुसार एक आत्मा एक ही ज्ञान का ज्ञाता ओर ज्ञेय नहीं हो सकता । इसलिए अहंवित्ति की धारण अनुपयुक्त है। इस प्रकार उनका कहना है कि एक क्रिया में

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
IJARSCT
Impact Factor: 6.252
Volume 3, Issue 1, January 2023

एक वस्तु का एक ही साथ कर्ता और कर्म नहीं दोनों नहीं हो सकता कर्ता और कर्म के व्यापार परस्पर विरुद्ध हैं किन्तु इस मत के विरुद्ध भट्ट मत वदियों का कहना है कि आत्मा प्रत्येक विषय ज्ञान में उसी ज्ञा के द्वारा कर्ता के रूप में भी ज्ञान होता है। अतः कर्ता और कर्म का युगवद ज्ञान होता है। यहाँ प्रतिवादी पक्ष का कहना है कि यदि प्रत्येक ज्ञान के साथ आत्मा का ज्ञान भी होता है तो मैं इस घट को जान रहा हूँ यह बोध प्रत्येक विषय ज्ञान के साथ होना चाहिए। किन्तु आत्मज्ञान विषयज्ञान से भिन्न है। कर्ता और कर्म तर्क के विषय नहीं है। यदि दोनों में वास्तविक विरोध है तो आत्मानं विद्धि का वैदिक वाक्य और मैं स्वयं को जानता हूँ यह लौकिक वाक्य दोनों ही अर्थहीन है। यदि आत्म ज्ञान का विषय नहीं है। तो फिर अतीत में आत्मा के अस्तित्व को कैसे माना जा सकता है। अतीत कालीन आत्मा केवल वर्तमान कालीन आत्मा के स्मृति ज्ञान का कैसे विषय हो सकता है। क्योंकि वह वर्तमान ज्ञान ज्ञाता तो ही नहीं। इससे स्पष्ट होता है कि आत्मा का ज्ञान विषय हो सकता है।

इस प्रकार से कहा जा सकता है कि उक्त दोनों मत अपने –अपने स्थान पर सही है। एक–दूसरे के पक्ष की आलोचना करना ही दोनों का लक्ष्य प्रतीत होता है। आत्मा के विषय में विचार करने से ज्ञात होता है कि आत्मा का ज्ञान दोनों ही मतों में होता है। आत्मा अहंवित्ति का विषय है और दूसरी ओर प्रत्येक विषय के ज्ञान में भी उसका बोध होता है। इन दोनों मतों का समर्थन अनेक विद्वानों ने किया है।''ज्ञान का ज्ञान कैसे प्राप्त होता है" इसका भी समाधान मीमांसा दर्शन में अनेक प्रकार से किया गया है। गुरुमत के अनुसार प्रत्येक विषय ज्ञान में तीन अंग होते हैं ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान । जैसे–घट महं जानामि। इस ज्ञान को जानने वाला ज्ञाता मैं, जाना जाने वाला 'घटं' ज्ञये, घट ज्ञान का ज्ञान तीनों ही विद्यमान है। इस तरह से उक्त ज्ञान की प्राप्ति से ही कैवल्य या मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची –

[1]. डॉ. गजानन्द शास्त्री मुसलगांवकर (2003) मीमांसा दर्शन का विवेचनात्मक इतिहास, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान वाराणसी।

[2]. उमाशंकर शर्मा ऋषि (2003) भारतीय दर्शन, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान वाराणसी।

[3]. डॉ. श्रीृष्ण सक्सेना (2004) भारतीय दर्शन में चेतना का स्वरूप, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान वाराणसी।

[4]. सोमनाथ नेने (2008) मीमांसा दर्शन विमर्श, प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली।

[5]. ठाकुर शिवलोचन शाण्डिल्य (2014) मीमांसा दर्शन की ज्ञान–प्रक्रिया, विद्या निधि प्रकाशन, दिल्ली